दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

निर्णय की तिथि: 02.07.2008

नि.या. 196/2007 में नि.अ. 133/2008

जितेंदर मोहन मलिक ... डिक्री धारक

- बनाम -

रवि भूषण मलिक ... निर्णीत ऋणी/आवेदक

<u>इस मामले में प्रस्तुत हुए अधिवक्तागण:</u>

डिक्री धारक के लिए : श्री एम. कयाम-उद्-दीन

निर्णीत ऋणी के लिए : श्री ए. के. सिंगला, वरिष्ठ अधिवक्ता सह श्री पंकज गुप्ता

कोरम:-

माननीय न्यायमूर्ति श्री बदर दुर्रेज़ अहमद

1. क्या स्थानीय समाचार पत्र के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? हाँ
2. रिपोर्टर को संदर्भित किया जाना है या नहीं? हाँ
3. क्या निर्णय डाइजेस्ट में प्रकाशित किया जाना चाहिए? हाँ

<u>न्या. बदर दुर्रेज़ अहमद</u>

1. यह आवेदन निर्णीत ऋणी की ओर से सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 151 के साथ पठित धारा 47 के अंतर्गत निष्पादन याचिका को इस

आधार पर खारिज करने के लिए दायर किया गया है कि दिनांक 25.05.2006 का अधिनिर्णय निष्पादन योग्य नहीं है। निर्णीत ऋणी की ओर से यह प्रतिवाद दिया गया है कि दिनांक 25.05.2006 का माध्यस्थम् अधिनिर्णय निष्पादित नहीं किया जा सकता क्योंकि यह रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत नहीं है। निर्णीत ऋणी के अनुसार, अधिनिर्णय में परिवार के सदस्यों के मध्य विवाद पर निर्णय लेकर तथा परिवार के सदस्यों के हितों का मौद्रिक रूप में मूल्यांकन करके अचल संपत्ति का विभाजन किया गया है, तथा एक सदस्य को दूसरे सदस्य की संपत्ति का कुछ भाग आवंटित करने के पश्चात् क्षतिपूर्ति देने की आवश्यकता बताई गई है। यह प्रतिवाद किया गया है कि इस तरह के अधिनिर्णय के लिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(1)(ख) के अंतर्गत अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता होती है।

2. निर्णीत ऋणी की ओर से यह भी प्रतिवाद किया गया है कि चूँकि प्रश्नगत अधिनिर्णय अचल संपत्ति का विभाजन करना चाहता है, इसलिए ऐसा अधिनिर्णय भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2(15) के अंतर्गत आएगा और परिणामस्वरूप उक्त अधिनियम की अनुसूची I के अनुच्छेद 45 के साथ पठित अनुच्छेद 12 के अनुसार स्टाम्पित किया जाना होगा। यह अधिनिर्णय मात्र 100/- रुपए के न्यायिकेतर स्टाम्प पर तैयार किया गया है, इसलिए यह अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित है। परिणामस्वरूप, इस अधिनिर्णय को साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा सकता है और परिबद्ध किए जाने योग्य है।

3. निर्णीत ऋणी की ओर से यह भी प्रतिवाद किया गया है कि उक्त अधिनिर्णय को इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए अब रजिस्ट्रीकृत नहीं किया जा सकता है, क्योंकि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 23 के अंतर्गत विहित अवधि और अधिनियम की धारा 25 में बताई गई विस्तारित अवधि भी समाप्त हो चुकी है, भले ही पक्षकारगण ने इसे रजिस्ट्रीकृत करने की माँग की हो।

4. अंत में तथा उपरोक्त के प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के, निर्णीत ऋणी की ओर से यह प्रतिवाद किया गया था कि पक्षकारगण को आवंटित भूमि की लागत के अंतर (15,20,000/- रुपये) के भुगतान में देरी होने की स्थिति में अधिनिर्णय में निषेधात्मक ब्याज दर निर्धारित की गई है। अधिनिर्णय में निहित ब्याज के रूप में शर्तें इस प्रकार हैं कि 120 दिनों की अवधि के लिए कोई ब्याज देय नहीं होगा। हालाँकि, 120 दिनों की समाप्ति के बाद, निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्री धारक को 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज देय होगा। यदि 15,20,000/- रुपये की उक्त राशि के भुगतान में देरी 240 दिनों से अधिक होती है, तो लागू ब्याज दर 24% प्रति वर्ष होगी और यदि देरी 360 दिनों से अधिक होती है, तो 24% प्रति वर्ष की दर से ब्याज के अतिरिक्त, निर्णीत ऋणी को 10,000/- रुपये प्रति दिन की दर से नुकसानी भी देनी होगी। निर्णीत ऋणी के अनुसार, ये शर्तें सार्वजनिक नीति के विरुद्ध हैं तथा भारतीय संविदा

अधिनियम, 1872 की धारा 23, 24 के उपबंधों तथा धारा 73 और 74 में निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अमान्य होंगी।

5. प्रश्नगत अधिनिर्णय दोनों पक्षकारगण की सहमति से दिया गया है। उक्त अधिनिर्णय निम्नानुसार है:-

"माध्यस्थम् अधिनिर्णय

मैं, धर्म बीर मलिक, पुत्र: स्वर्गीय श्री उत्तम चंद मलिक, निवासी: 15/41, पंजाबी बाग पश्चिम, नई दिल्ली-110026 ने आज 25 मई, 2006 को नई दिल्ली में वर्तमान अधिनिर्णय पारित किया है।

मैसर्स एस.एम.डी. (रजि.), 41, रामा रोड, नजफ़गढ़ रोड, औद्योगिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110015 के भागीदार श्री जितेन्द्र मोहन मलिक और श्री रवि भूषण मलिक ने सभी विवादों को सुलझाने के लिए मुझे एकमात्र मध्यस्थ नियुक्त किया है।

दोनों पक्षकारगण के सभी तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद, मैं निम्नलिखित निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ:-

1. प्लॉट सं. 41, रामा रोड, नजफ़गढ़ रोड, औद्योगिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110015 की भूमि को मैसर्स एस.एम.डी. (रजि.), 41, रामा रोड, नजफ़गढ़ रोड, औद्योगिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110015 के भागीदारों श्री जितेन्द्र मोहन मलिक और श्री रवि भूषण मलिक के मध्य विभाजित किया जाएगा। 'लाल' चिह्नित भाग श्री जितेन्द्र मोहन मलिक को जाएगा और 'हरा' चिह्नित भाग श्री रवि भूषण मलिक को जाएगा, परंतु श्री रवि भूषण मलिक दोनों के मध्य विभाजित भूमि के मूल्य के अंतर के लिए श्री जितेन्द्र मोहन को 15,20,000/- रुपये (पंद्रह लाख बीस हज़ार रुपये मात्र) का भुगतान करेगा। निर्धारित की गई राशि श्री रवि

भूषण मलिक द्वारा श्री जितेन्द्र मोहन मलिक को 120 दिनों के भीतर चुकाई जाएगी और यदि श्री रवि भूषण मलिक 120 दिनों के भीतर निर्धारित राशि का भुगतान करने में विफल रहता है, तो उसे 18% प्रति वर्ष की दर से ब्याज देना होगा और यदि वह 120 दिनों से अधिक देरी करता है, तो उसे अन्य 120 दिनों के लिए 24% प्रति वर्ष की दर से ब्याज देना होगा और आगे की देरी के मामले में उसे 24% प्रति वर्ष ब्याज के अतिरिक्त प्रतिदिन 10,000/- रुपये (केवल दस हजार रुपये) की दर से नुकसानी चुकानी होगी।

2. मौका-ए-नक्शा के अनुसार कब्ज़ा भी अधिनिर्णय की तिथि से 15 दिनों के भीतर निर्धारित कर दिया जाएगा।

3. दोनों पक्षकारगण माध्यस्थम कार्यवाही की लागतों के लिए 5,000/- रुपये (केवल पाँच हज़ार रुपये) का भुगतान करने के लिए अतिरिक्त रूप से उत्तरदायी हैं जिसमें मानचित्रों की लागत और टंकण व्यय शामिल हैं और दोनों पक्षकारगण 50:50 के अनुपात में राशि का भुगतान करेंगे। इस अधिनिर्णय के कार्यान्वयन के पश्चात् कंपनी मैसर्स एस.एम.डी. (रजि.) विघटित हो जाएगी तथा सभी लेखों का निपटारा हो जाएगा। यह अधिनिर्णय दोनों पक्षकारगण की सहमति से दिया गया है।

4. यह अधिनिर्णय दोनों पक्षकारगण की सहमति से मेरे द्वारा पारित और हस्ताक्षरित किया गया है। दोनों पक्षकारगण ने अपनी सहमति के प्रतीक के रूप में अधिनिर्णय और मौका-ए-नक्शा पर हस्ताक्षर किए हैं और ऊपर उल्लिखित तिथि, माह और वर्ष पर इसकी प्रतियाँ प्राप्त की हैं।

मध्यस्थ"

6. निर्णीत ऋणी की ओर से वरिष्ठ अधिवक्ता श्री ए.के. सिंगला द्वारा कई निर्णयों पर भरोसा किया गया। पहला निर्णय जिस पर भरोसा किया गया

वह ***<u>भारत संघ बनाम जगत राम त्रेहान एंड संस:</u> 61 (1996) डी.एल.टी. 779 (डी.बी.)*** का मामला था, जिसमें यह प्रतिपादना थी कि सि.प्र.सं. की धारा 47 किसी अधिनिर्णय के संबंध में निष्पादन कार्यवाही के लिए आकर्षित और लागू होती है। इस न्यायालय की एक खंड पीठ ने इस प्रश्न पर विचार किया कि क्या निष्पादन कार्यवाही में यह अभिवाक् उठाया जा सकता है कि कोई अधिनिर्णय शून्य है। खंड पीठ ने यह विचार किया कि धारा 47 किसी डिक्री के अनुसरण में की गई निष्पादन कार्यवाही पर लागू होती है, जो किसी अधिनिर्णय को न्यायालय का विनिर्णय बनाती है और धारा 47 के अंतर्गत निष्पादन न्यायालय यह घोषित करने के लिए स्वतंत्र था कि अधिनिर्णय बिना अधिकार क्षेत्र के पारित किया गया है और उस पर पारित डिक्री भी अकृत और शून्य है और निष्पादनीय नहीं है। ***<u>एम. अनसूया देवी बनाम एम. माणिक रेड्डी:</u> 2003 (9) स्केल 12*** में, उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि यह प्रश्न कि क्या किसी अधिनिर्णय को स्टाम्पित और रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक है, केवल तभी प्रासंगिक होगा जब पक्षकारगण माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36 के अंतर्गत इसके प्रवर्तन के लिए अधिनिर्णय दाखिल करेंगे।

7. श्री सिंगला ने इसके बाद ***<u>अनुराग मलिक बनाम अमित मलिक एवं अन्य:</u> 126 (2006) डी.एल.टी. 114*** के मामले में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय का संदर्भ दिया। हालाँकि, मेरा मानना है कि उक्त निर्णय निर्णीत ऋणी के मामले को आगे नहीं बढ़ाता है। उस निर्णय में विचार

किए गए मुद्दों में से एक यह था कि अधिनिर्णय को अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित किया गया था और परिणामस्वरूप क्या ऐसे अधिनिर्णय को भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 के अंतर्गत परिबद्ध करने की आवश्यकता थी। भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 2 (15) की व्याख्या करते हुए, विद्वान एकल न्यायाधीश का मानना था कि विभाजन के लिखत का अर्थ है एक ऐसा लिखत जिसके द्वारा किसी संपत्ति के सह-स्वामी उस संपत्ति को अलग-अलग भागों में विभाजित करते हैं या विभाजित करने के लिए सहमत होते हैं, और इसमें किसी राजस्व प्राधिकरण या किसी सिविल न्यायालय द्वारा पारित विभाजन को प्रभावित करने के लिए अंतिम आदेश भी शामिल है और इसमें विभाजन का निर्देश देने वाले मध्यस्थ द्वारा दिया गया अधिनिर्णय भी शामिल है। यह भी टिप्पणी की गई कि इस तरह के दस्तावेज़ के मामले में, अनुसूची-I के अनुच्छेद 45 के अनुसार, इस तरह के लिखत पर देय स्टाम्प शुल्क वही होगा जो संपत्तियों के अलग किए गए भागों या शेयरों के मूल्य की राशि के लिए बॉन्ड पर देय है और संपत्ति के विभाजन के बाद बचा हुआ सबसे बड़ा भाग वह माना जाएगा जिससे अन्य भाग अलग किए गए हैं। उस मामले में, प्रासंगिक सीमा तक, अधिनिर्णय निम्नानुसार है:-

> "संपत्ति सं. A/20, महेंद्रो एन्क्लेव, नई दिल्ली
>
> 11. श्रीमती कमलेश मलिक श्री अनुराग मलिक के पक्ष में बेसमेंट, प्रथम और द्वितीय तल सहित छत के संबंध में

आवश्यक अंतरण दस्तावेज़ निष्पादित करेंगी, भूतल को छोड़कर जो श्रीमती कमलेश मलिक के कब्ज़े में ही रहेगा।

12. इसी प्रकार, श्री अमित मलिक और श्री अनुराग मलिक सदर बाज़ार के भंडारगृह और अपना विला स्थित फ़्लैट के संबंध में श्रीमती कमलेश मलिक के पक्ष में अंतरण के दस्तावेज़ निष्पादित करेंगे।

सदर बाज़ार की दुकान मैसर्स मलिक लाइट हाउस

13. इसी तरह श्रीमती कमलेश मलिक और श्री अनुराग मलिक श्री अमित मलिक के पक्ष में अंतरण के दस्तावेज़ निष्पादित करेंगे।

14. इसके अतिरिक्त, मैसर्स मलिक लाइट हाउस, भारत और विदेश में निर्यात फ़र्म के संबंध में परिसंपत्तियों, स्टॉक, लेनदारों, मौजूदा नकदी के मूल्य के साथ-साथ देनदारों, ऋणों, भुगतान किए जाने वाले ब्याज को अंतिम रूप देने और वितरण के समय तीन भागीदारों के बीच समान रूप से विभाजित किया जाएगा।"

विद्वान एकल न्यायाधीश ने अधिनिर्णय को इस प्रकार से समझा कि यह प्रत्येक पक्षकार के अधिकार को दर्शाता है तथा निर्दिष्ट करता है कि प्रत्येक पक्षकारगण को क्या प्राप्त होगा। विद्वान एकल न्यायाधीश के अनुसार अधिनिर्णय में यह परिकल्पना की गई थी कि अंतरण संबंधित पक्षकारगण द्वारा अन्य पक्षकारगण के पक्ष में निष्पादित किए जा रहे दस्तावेज़ों पर होगा तथा ऐसे दस्तावेज़ स्वाभाविक रूप से रजिस्ट्रीकृत होने योग्य होंगे क्योंकि वे अचल संपत्ति को अंतरित करेंगे। ऐसे दस्तावेज़ों को विधि के अनुसार स्टाम्पित

भी किया जाना चाहिए। लेकिन, विद्वान एकल न्यायाधीश का विचार था कि ऐसा नहीं है कि उक्त अधिनिर्णय ने स्वयं संपत्तियों का बँटवारा कर दिया हो। इसके विपरीत, अधिनिर्णय ने कुछ दस्तावेज़ों को निष्पादित करने का निर्देश दिया था, जो बदले में संबंधित संपत्ति का स्वामित्व प्रदान करेंगे। इस संदर्भ में यह टिप्पणी की गई कि यदि विभाजन विलेख पर भरोसा करने के अतिरिक्त कुछ और करने की आवश्यकता थी, तो निर्णीत ऋणी के विद्वान अधिवक्ता की यह प्रस्तुति बलपूर्वक होगी कि दस्तावेज़ को उचित रूप से स्टाम्पित नहीं किया गया था। लेकिन, स्थिति ऐसी नहीं थी।

8. श्री सिंगला ने ***हरीश चंदर शर्मा बनाम श्रीमती प्रीति शर्मा: आई.एल.आर. (1976) I दिल्ली 142*** के मामले में दिए गए निर्णय का संदर्भ दिया, जिसमें इस न्यायालय के एक अन्य विद्वान एकल न्यायाधीश ने भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 2(15) के उपबंधों की व्याख्या की थी, जो"विभाजन के लिखत" को परिभाषित करता है। न्यायालय ने टिप्पणी की कि विभाजन का निर्देश देने वाले मध्यस्थ द्वारा दिया गया अधिनिर्णय स्टाम्प शुल्क के साथ प्रभार्य विभाजन का लिखत बन जाता है, इस तथ्य के बावजूद कि यह माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 की धारा 23 (1) के अंतर्गत संदर्भ के आदेश के अनुसरण में बनाया गया था या न्यायालय के हस्तक्षेप के बिना बनाया गया था। यह अभिनिर्धारित किया गया कि जैसे ही कोई अधिनिर्णय दिया जाता है, उस पर स्टाम्प शुल्क लगता है और न्यायालय में अधिनिर्णय

को बरकरार रखने के बाद स्टाम्प शुल्क के भुगतान को आस्थगित करने का कोई प्रश्न ही नहीं है। अधिनिर्णय का निष्पादनकर्ता मध्यस्थ होने के नाते, यह उनका कर्तव्य था कि वह पक्षकारगण को आवश्यक स्टाम्प पेपर उपलब्ध कराने का निर्देश देते और फिर उन्हें अपना अधिनिर्णय बनाकर प्रकाशित करना चाहिए था। यद्यपि वह मामला अधिनिर्णय अधिनियम, 1940 के अंतर्गत तय किया गया था और मुद्दे थोड़े अलग थे, लेकिन विधि में स्थिति स्पष्ट है कि विभाजन का निर्देश देने वाला अधिनिर्णय स्टाम्प शुल्क के साथ विभाजन का एक लिखत बन जाता है। यदि इस तरह के अधिनिर्णय को पर्याप्त स्टाम्पित नहीं किया गया है, तो उसे भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 38 (2) के अंतर्गत परिबद्ध करके कलेक्टर के पास भेजा जा सकता है। कलेक्टर को बदले में धारा 40 और उक्त अधिनियम के अन्य उपबंधों में निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करना होता है और कलेक्टर द्वारा उक्त अधिनियम में दिए गए उपबंधों के अनुसार इससे निपटने के बाद, मूल दस्तावेज़ को आगे की कार्यवाही के लिए न्यायालय को वापस करना होता है।

9. ***<u>सतीश कुमार बनाम सुरिंदर कुमार:</u> ए.आई.आर. 1970 एस.सी. 833*** में, उच्चतम न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न उठा था कि क्या भारतीय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के अंतर्गत एक निजी संदर्भ पर दिए गए अधिनिर्णय को भारतीय रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1908 की धारा 17 (1) (ख) के अंतर्गत रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता है, यदि अधिनिर्णय 100 रुपये से

अधिक मूल्य की अचल संपत्ति का विभाजन करता है। उच्चतम न्यायालय ने ***<u>उत्तम सिंह दुग्गल एंड कंपनी बनाम भारत संघ:</u> सिविल अपील सं. 162/1962*** (11.01.1962 को निर्णीत) के मामले में अपने पहले के अप्रतिवेद्य निर्णय पर भरोसा करते हुए निष्कर्ष निकाला कि एक अधिनिर्णय में कुछ विधिक बल होता है और यह बस एक बेकार कागज़ नहीं है। उच्चतम न्यायालय ने आगे टिप्पणी की कि यदि प्रश्नगत अधिनिर्णय बस एक बेकार कागज़ नहीं था, बल्कि इसका कुछ विधिक प्रभाव था, तो यह स्पष्ट रूप से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(1)(ख) के अर्थ के भीतर संपत्ति को प्रभावित करता है। माननीय न्यायमूर्ति के. एस. हेगड़े, न्या. ने एक अलग लेकिन सहमत राय में टिप्पणी की कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 (1) (ख) के प्रयोजनों के लिए केवल यह देखा जाना है कि क्या प्रश्नगत अधिनिर्णय वर्तमान या भविष्य में, एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित को बनाने या घोषित करने, सौंपने, सीमित करने या समाप्त करने का इरादा रखता है यदि ऐसा है, तो यह अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत करने योग्य है। यह भी उल्लेख किया गया कि एक दस्तावेज़ वैध रूप से अधिकार बना सकता है लेकिन वे अधिकार विभिन्न कारणों से लागू नहीं हो सकते हैं। धारा 17 अधिकारों के प्रवर्तन से संबंधित नहीं है। जैसे ही इसकी आवश्यकताएँ पूरी होती हैं, वह धारा लागू हो जाती है।

10. श्री सिंगला ने इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के मामले में ***<u>तरलोचन सिंह सरना बनाम महिंदरपाल सिंह बिंद्रा और अन्य:</u> 42 (1990) डी.एल.टी. 470*** के निर्णय पर भरोसा किया, जिसमें प्रतिपादना की गई थी कि अचल संपत्ति के विभाजन को प्रभावित करने वाले अधिनिर्णय के लिए रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता अनिवार्य होती है। उस मामले में विचार के लिए जो प्रश्न उठा वह यह था कि क्या एक अधिनिर्णय स्वयं एक निर्वसीयती लिखत होने के नाते वर्तमान या भविष्य में, एक सौ रुपये या उससे अधिक मूल्य के किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित, चाहे निहित हो या आकस्मिक, को बनाने, घोषित करने, सौंपने, सीमित करने या समाप्त करने का इरादा रखता है या संचालित करता है, जो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(1) (ख) के अंतर्गत आता है? उस मामले में एकमात्र मध्यस्थ द्वारा दिया गया अधिनिर्णय निम्नलिखित प्रभाव का था:-

> "(1) श्रीमती जसविंदर कौर भंडारी श्री महिंदर पाल सिंह बिंद्रा को उपरोक्त मकान में उसके भाग के पूर्ण मूल्य के रूप में 1,50,000 रुपये की कुल राशि आज मेरी उपस्थिति में बैंक ड्राफ़्ट द्वारा अदा करेगी;
>
> (2) श्री गुरबीर सिंह बिंद्रा श्रीमती उषपिन्दर कौर गुजराल को उपरोक्त मकान में उसके भाग के पूर्ण प्रतिफल के रूप में कुल 50,000 रुपये की राशि आज मेरी उपस्थिति में पंजाब नेशनल बैंक, पंजाबी बाग, नई दिल्ली के नाम पर बाद की दिनांक के चेक सं. 922351 दिनांक 5-11-88 द्वारा अदा करेगा;

(3) श्री महिंदर पाल सिंह बिंद्रा और श्रीमती उशपिंदर कौर गुजराल के पास इसके बाद कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं होगा और उक्त संपत्ति का अधिकार इसके बाद श्रीमती जसविंदर कौर भंडारी और श्री गुरबीर सिंह बिंद्रा में निहित होगा।

(4) उक्त मकान अब से श्रीमती जसविंदर कौर भंडारी और श्री गुरबीर सिंह बिंद्रा का होगा, तदनुसार यहाँ संलग्न योजना में दर्शाए गए शेयरों के अनुसार और अनुलग्नक 'ए' के रूप में चिह्नित किया गया है। श्रीमती जसविंदर कौर भंडारी को जो मकान आवंटित किया गया है, उसे लाल सीमा रेखाओं द्वारा दिखाया गया है और एबीसीडी (पीछे का भाग) के रूप में चिह्नित किया गया है। मकान का बाकी भाग (सामने का भाग) श्री गुरबीर सिंह बिंद्रा को आवंटित किया गया है। प्रवेश, रास्ता और सीढ़ियाँ दोनों पक्षकारगण के लिए सामान्य होंगी और उनमें से कोई भी विशेष उद्देश्यों के लिए उनका उपयोग नहीं करेगा। श्रीमती जसविंदर कौर भंडारी और श्री गुरबीर सिंह बिंद्रा को आवंटित संपत्ति के संबंधित भाग विशेष रूप से उनके पास निहित होंगे और श्री महिंदर पाल सिंह बिंद्रा और श्रीमती उशपिंदर कौर गुजरात का उनमें कोई अधिकार, शीर्षक या हित नहीं होगा।

यदि, फिर भी, किसी भी कारण से, प्रस्तुत किए जाने पर उक्त चेक को भुनाया नहीं जाता है, तो श्रीमती उशपिन्दर कौर गुजराल को श्री गुरबीर सिंह बिनलरा को आवंटित किए गए सामने के भाग पर अपनी इच्छानुसार निर्माण करने का पूर्ण और अप्रतिबंधित अधिकार होगा, अर्थात वह दूसरा तल (प्रथम तल) बनाने की हकदार होगी। इसके अतिरिक्त, श्रीमती उशपिन्दर कौर गुजराल भी

> संबंधित घर से सटे प्लॉट सं. 8/57 की ओर भूतल क्षेत्र और उस पर स्थित इमारतों में से एक की हकदार होगी और उस स्थिति में प्रवेश, मार्ग और साथ ही सीढ़ियों का उपयोग उन सभी द्वारा किया जाएगा।"

विद्वान एकल न्यायाधीश ने विधि के सिद्धांतों के प्रकाश में उक्त अधिनिर्णय की व्याख्या करने के बाद उसे विभाजन का एक लिखत और विभाजन का एकमात्र साक्ष्य माना। उस मामले में अचल संपत्ति के विभाजन के लिए मध्यस्थ को संदर्भित किया गया था और मध्यस्थ ने संपत्ति के विभाजन को प्रभावी करने वाला अधिनिर्णय दिया था। उन्होंने दो भागीदारों के हितों का भी धन के संदर्भ में मूल्यांकन किया था और अन्य दो भागीदारों को उसी का भुगतान करने की आवश्यकता थी और दो सह-स्वामियों को घर के विभिन्न भाग आवंटित किए थे। परिणामस्वरूप, अधिनिर्णय को समग्र रूप से पढ़ते हुए, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उसी ने अचल संपत्ति का विभाजन किया और सह-स्वामियों के अधिकारों को समाप्त कर दिया और इस प्रकार इसे अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत किया जाना आवश्यक था। चूँकि इसे रजिस्ट्रीकृत नहीं किया गया था, इसलिए न्यायालय द्वारा अधिनिर्णय पर विचार नहीं किया जा सका और न्यायालय ने एक विनिर्णय बनाया।

11. श्री सिंगला ने ***<u>रण सिंह बनाम गांधार कृषि सहकारी सेवा सोसायटी: ए.आई.आर. 1976 पी एंड एच 94 (एफ.बी.)</u>*** के मामले में पंजाब और हरियाणा

उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायपीठ के निर्णय पर भी भरोसा किया। उस निर्णय में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के अंतर्गत न्यायालय के पास डिक्री के निष्पादन, उन्मोचन या संतुष्टि से संबंधित सभी प्रश्नों पर निर्णय करने का अधिकार क्षेत्र है। उक्त टिप्पणी पंजाब सहकारी समिति अधिनियम, 1961 की धारा 63 के उपबंधों के संदर्भ में किया गया था और न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि निष्पादन न्यायालय को यह निर्धारित करने से नहीं रोका जा सकता कि कोई अधिनिर्णय उस अधिनियम की धारा 63 के अर्थ में "विधिवत पारित हुआ है या नहीं"। श्री सिंगला द्वारा जिस अंतिम निर्णय पर भरोसा किया गया, वह ***टाइटेनियम टैंटालम प्रोडक्ट्स लिमिटेड बनाम श्रीराम अल्कली एंड केमिकल्स: 2006 (2) माध्य. एल.आर. 366 (दिल्ली)*** का था। उस निर्णय में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने यह विचार किया था कि भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 73 और 74 के उपबंधों के विपरीत किसी मध्यस्थ को नुकसानी की गणना करने की अनुमति नहीं है। हालाँकि, वह निर्णय माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत दिया गया था और यह ऐसा प्रश्न नहीं था जिस पर निष्पादन न्यायालय द्वारा विचार किया जा रहा था।

12. श्री एम. कयाम-उद-दीन, जो डिक्री धारक की ओर से उपस्थित हुए, ने प्रस्तुत किया कि प्रश्नगत अधिनिर्णय, जैसा कि पैराग्राफ़ 3 और 4 में उल्लेख किया गया है, दोनों पक्षकारगण की सहमति से पारित किया गया था। उक्त

अधिनिर्णय के पैराग्राफ़ 3 में यह उल्लेख किया गया है कि अधिनिर्णय के कार्यान्वयन के बाद फ़र्म मैसर्स एस.एम.डी. (रजि.) भंग हो जाएगी और सभी लेखे निपटाए जाएँगे। फिर उन्होंने अधिनिर्णय के पैराग्राफ़ 1 का संदर्भ दिया और 'जाएँगे' अभिव्यक्ति पर ज़ोर दिया। उन्होंने प्रस्तुत किया कि यह स्पष्ट रूप से इंगित करता है कि अधिनिर्णय ने स्वयं संपत्तियों का विभाजन नहीं किया और केवल यह घोषित किया कि लाल रंग से चिह्नित भाग श्री जितेन्द्र मोहन मलिक (डिक्री धारक) को जाएगा और अधिनिर्णय से जुड़े मौका-ए-नक्शा के अनुसार हरा रंग से चिह्नित भाग श्री रवि भूषण मलिक (निर्णीत ऋणी) को जाएगा। उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि यह निर्णीत ऋणी द्वारा उन दोनों के बीच विभाजित भूमि की लागत के अंतर के लिए डिक्री धारक को 15,20,000/- रुपये की राशि का भुगतान करने के अधीन था। विद्वान अधिवक्ता ने कहा कि चूँकि 15,20,000/- रुपये की उक्त राशि निर्णीत ऋणी द्वारा डिक्री धारक को नहीं चुकाई गई थी, इसलिए किसी भी विभाजन का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिनिर्णय स्वामित्व प्रदान नहीं करता है और न ही निर्णीत ऋणी और न ही डिक्री धारक केवल अधिनिर्णय के आधार पर संबंधित भागों को बेच सकते हैं, जिनके वे हकदार हैं। उन्होंने कहा कि जब विभाजन विलेख तैयार किया जाएगा तो उस पर स्टाम्प शुल्क लगेगा। हालाँकि, अधिनिर्णय संपत्ति का विभाजन नहीं करता है और इसलिए इसे विभाजन का लिखत नहीं माना जा सकता है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिनिर्णय केवल

अधिकारों की पहचान करता है लेकिन हक प्रदान नहीं करता है और इसलिए यह भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 (15) के अर्थ में विभाजन का लिखत नहीं है।

13. श्री कयाम-उद-दीन ने ***श्रीमती अरुणा परवाल बनाम कैसिया चैटल्स (प्रा.) लिमिटेड: 1991 (1) (भाग 14) 48*** के मामले में इस न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय का उल्लेख किया। उस मामले में मध्यस्थ ने निम्नलिखित अधिनिर्णय दिया:-

> "यह अधिनिर्णय दिया गया कि मैसर्स कैसिया चैटल्स प्राइवेट लिमिटेड, 7, हैली रोड, नई दिल्ली में भूमि और उस पर भवन के लगभग 2000 वर्ग मीटर के पीछे के भाग का खाली कब्ज़ा मैसर्स कैसिया चैटल्स प्राइवेट लिमिटेड के पक्ष में सौंपने के लिए 1.20 करोड़ रुपये का भुगतान करे। कोई शुल्क और निकासी शुल्क नहीं लिया जाएगा।"

न्यायालय के समक्ष निर्णय के लिए यह प्रश्न उठा कि क्या अधिनिर्णय स्वयं में अचल संपत्ति पर कोई अधिकार घोषित करता है। ***कैप्टन अशोक कश्यप बनाम श्रीमती सुधा वशिष्ठ एवं अन्य: 1987 (1) एस.सी.सी. 717*** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देने के बाद, विद्वान एकल न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनिर्णय केवल श्रीमती अरुणा परवाल को मैसर्स कैसिया चैटल्स प्राइवेट लिमिटेड से उक्त कंपनी की अचल संपत्ति के उक्त भाग का कब्ज़ा सौंपने के लिए प्रतिफल के रूप में 1.20 करोड़ रुपये प्राप्त करने का

अधिकार घोषित करता है। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि उक्त राशि का भुगतान करने पर ही कंपनी को संपत्ति के उक्त भाग का खाली कब्ज़ा पाने का अधिकार प्राप्त होगा। दस्तावेज़ स्वयं में उक्त कंपनी की अचल संपत्ति पर कोई अधिकार प्रदान नहीं करता। परिणामस्वरूप, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अधिनिर्णय को अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत कराने की आवश्यकता नहीं थी।

14. विद्वान अधिवक्ता ने माध्यस्थम् एवं सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 35 और 36 के उपबंधों का संदर्भ दिया, जो निम्नानुसार हैं:-

> **"35. मध्यस्थता अधिनिर्णयों को अंतिम रूप देना** – इस भाग के अधीन रहते हुए मध्यस्थता अधिनिर्णय अंतिम होगा तथा उसके अंतर्गत दावा करने वाले पक्षकारगण और व्यक्तियों पर बाध्यकारी होगा।
>
> **36. प्रवर्तन** – जहाँ धारा 34 के अंतर्गत मध्यस्थता अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए आवेदन करने का समय समाप्त हो गया है, या ऐसा आवेदन किए जाने के पश्चात् उसे अस्वीकार कर दिया गया है, वहाँ अधिनिर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के अंतर्गत उसी तरह लागू किया जाएगा जैसे कि वह न्यायालय की डिक्री हो।

उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 35 में स्पष्ट रूप से अनुबंधित किया गया है कि अधिनिर्णय अंतिम होगा और पक्षकारगण पर बाध्यकारी होगा। धारा 36 के अनुसार, एक बार धारा 34 के अंतर्गत आवेदन करने की अवधि समाप्त हो जाने पर या ऐसा आवेदन करने से इनकार कर दिए जाने पर, निर्णय को

सिविल प्र ि या संहिता के अंतर्गत उसी तरह लागू किया जाना चाहिए जैसे कि "यह न्यायालय की डिक्री हो"। उन्होंने प्रस्तुत किया कि वर्तमान मामले में निर्णीत ऋणी ने मध्यस्थता अधिनिर्णय को अपास्त करने के लिए धारा 34 के अंतर्गत कोई आवेदन दायर नहीं किया है। ऐसा आवेदन करने का समय भी समाप्त हो गया है। इसलिए, अधिनिर्णय निष्पादन योग्य है और उसी तरह लागू किया जा सकता है जैसे कि यह न्यायालय की डिक्री हो।

15. श्री कयाम-उद-दीन ने तब रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों और विशेष रूप से धारा 17 (2) (vi) का उल्लेख किया। धारा 17, जहाँ तक प्रासंगिक है, निम्नानुसार है:-

> **“17. दस्तावेज़ जिनका रजिस्ट्रीकरण अनिवार्य है-**
>
> (1) निम्नलिखित दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री करनी होगी यदि वह सम्पत्ति, जिससे उनका संबंध है, ऐसे ज़िले में स्थित है, जिसमें और यदि वे दस्तावेज़ उस तिथि को या उसके पश्चात् निष्पादित हुए हैं, जिसको, 1864 का अधिनियम संख्यांक 16 या भारतीय रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1866 (1866 का 20) या भारतीय रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1871 (1871 का 8) या भारतीय रजिस्ट्रेशन अधिनियम, 1877 (1877 का 3) या यह अधिनियम प्रवर्तन में आया था या आता है, अर्थात्:-
>
> (क) xxxx xxxx xxxx xxxx
>
> (ख) अन्य निर्वसीयती लिखत जिनसे यह तात्पर्यित हो या जिनका प्रवर्तन ऐसा हो कि वे स्थावर संपत्ति पर या स्थावर संपत्ति में एक सौ रुपए या उससे अधिक के

मूल्य का कोई अधिकार, हक या हित, चाहे वह निहित, चाहे समाधित हो, चाहे वर्तमान में, चाहे भविष्य में सृष्ट, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित करती हो;

(ग) xxxx xxxx xxxx xxxx

(घ) xxxx xxxx xxxx xxxx

(ङ) न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश का, या किसी अधिनिर्णय का अंतरण या समनुदेशन करने वाला निर्वसीयती लिखत जबकि ऐसी डिक्री या आदेश, या अधिनिर्णय से यह तात्पर्यित हो या उसका प्रवर्तन ऐसा हो कि वह स्थावर संपत्ति पर या स्थावर संपत्ति में एक सौ रुपए या उससे अधिक मूल्य का कोई अधिकार, हक या हित, चाहे वह निहित चाहे समाश्रित हो, चाहे वर्तमान में चाहे भविष्य में, सृष्ट, घोषित, समनुदेशित, परिसीमित या निर्वापित करता हो:

परंतु राज्य सरकार किसी भी ज़िले या ज़िले के भाग में निष्पादित किन्हीं भी पट्टों को, जिनके द्वारा अनुदत्त पट्टा-अवधियाँ पाँच वर्ष से अनधिक हैं और जिनके द्वारा आरक्षित वार्षिक किराया पचास रुपए से अनधिक है शासकीय राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा उपधारा के प्रवर्तन से छूट दे सकेगी।

(1क) xxxx xxxx xxxx xxxx

(2) उपधारा (1) के खंड (ख) और (ग) में की कोई भी बात निम्नलिखित को लागू नहीं होगी-

(i) xxxx xxxx xxxx xxxx

(ii) xxxx xxxx xxxx xxxx

(iii) xxxx xxxx xxxx xxxx

(iv) xxxx xxxx xxxx xxxx

(v) xxxx xxxx xxxx xxxx

(vi) किसी न्यायालय की किसी डिक्री या आदेश को जो ऐसी डिक्री या आदेश से भिन्न है, जिसके बारे में यह अभिव्यक्त है कि वह किसी समझौते के आधार पर किया गया है और जो उस संपत्ति से, जो वाद या कार्यवाही की विषयवस्तु है, भिन्न स्थावर संपत्ति को समाविष्ट करता है; अथवा

(vii) xxxx xxxx xxxx xxxx

(viii) xxxx xxxx xxxx xxxx

(ix) xxxx xxxx xxxx xxxx

(x) xxxx xxxx xxxx xxxx

(xक) xxxx xxxx xxxx xxxx

(xi) xxxx xxxx xxxx xxxx

(xii) xxxx xxxx xxxx xxxx

(3) xxxx xxxx xxxx xxxx"

विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि धारा 17(2)(vi) को ध्यान में रखते हुए धारा 17(1)(ख) के उपबंध न्यायालय के किसी भी आदेश या डिक्री पर लागू नहीं होंगे। उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 17(2)(vi) में दिए गए अपवाद

वर्तमान मामले के तथ्यों पर लागू नहीं होते। परिणामस्वरूप, उन्होंने प्रस्तुत किया कि धारा 17(1)(ख) के उपबंध किसी अधिनिर्णय पर भी लागू नहीं होंगे, क्योंकि इसे उसी तरह लागू किया जाना था जैसे कि यह न्यायालय की डिक्री हो।

16. उन्होंने आगे प्रस्तुत किया कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत मध्यस्थता अधिनिर्णय के प्रारूप और विषय-वस्तु की आवश्यकताएँ धारा 31 के अंतर्गत प्रदान की गई हैं। एकमात्र आवश्यकता यह है कि मध्यस्थता अधिनिर्णय लिखित रूप में दिया जाएगा तथा उस पर माध्यस्थम् अधिकरण के सदस्यों के हस्ताक्षर होंगे। यहाँ अधिनिर्णय पर किसी भी स्टाम्प शुल्क लगाने की आवश्यकता नहीं है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 का संदर्भ देते हुए, विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि विधिवत स्टाम्पित न किया कोई लिखत साक्ष्य में अस्वीकार्य होगा। उन्होंने प्रस्तुत किया कि पुराने अधिनियम (माध्यस्थम् अधिनियम, 1940) के अंतर्गत, अधिनिर्णयों को लागू होने से पूर्व न्यायालय का विनिर्णय बनाना पड़ता था। उस प्रयोजन के लिए अधिनिर्णयों को साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए और यह आवश्यक था कि उन्हें विधिवत स्टाम्पित किया जाए। हालाँकि, नए अधिनियम (1996 अधिनियम) के अंतर्गत, यह आवश्यकता अब अस्तित्व में नहीं है और माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36 के आधार पर एक अधिनिर्णय अपने आप में उसी तरह निष्पादन योग्य हो जाता है जैसे

कि वह न्यायालय की कोई डिक्री हो। इसलिए, किसी अधिनिर्णय को अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित किए जाने का प्रश्न उसके निष्पादन में बाधा नहीं बन सकता, क्योंकि उसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार नहीं किया जा रहा है। उन्होंने भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 36 के संदर्भ में आगे प्रस्तुत किया कि जब कोई लिखत पहले ही साक्ष्य में स्वीकार कर लिया गया हो, तो ऐसे दस्तावेज़ को उसी वाद या कार्यवाही के किसी भी चरण में इस आधार पर प्रश्नगत नहीं किया जाएगा कि लिखत को विधिवत स्टाम्पित नहीं किया गया है। इसलिए, उन्होंने प्रतिवाद किया कि निर्णीत ऋणी अब इस चरण में अधिनिर्णय की स्वीकृति पर प्रश्न नहीं उठा सकता, जब उसने पहले ऐसा नहीं किया था।

17. ***<u>एनबीसीसी लिमिटेड बनाम लॉयड्स इंसुलेशन इंडिया लिमिटेड:</u> 2005 (पूरक) माध्य. एल. आर. 563 (एस.सी.)*** के मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ देते हुए उन्होंने प्रस्तुत किया कि निष्पादन करने वाला न्यायालय अधिनिर्णय के पीछे नहीं जा सकता। उस मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:-

> "अधिनियम की धारा 36 के प्रयोजनों के लिए, न्यायालय को अधिनिर्णीत राशि के पीछे जाने तथा उस राशि पर पहुँचने की प्रक्रिया पर विचार करने के लिए नहीं कहा जा सकता।"'

विद्वान अधिवक्ता ने तब ***<u>टी. पी. सिधवा एवं अन्य बनाम एस. बी. एंड संस प्राइवेट लिमिटेड:</u> ए.आई.आर. 1974 एस.सी. 1912*** के मामले में उच्चतम

न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया। इस मामले पर इस प्रतिपादना के लिए भरोसा किया गया था कि अचल संपत्तियों के विभाजन से संबंधित एक अधिनिर्णय अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत नहीं होगा जब यह केवल एक अन्य दस्तावेज़ प्राप्त करने का अधिकार बनाता है जो निष्पादित होने पर अचल संपत्तियों पर अधिकार निर्मित करता है। उस मामले में अधिनिर्णय पर विचार करते हुए, उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की कि अधिनिर्णय स्वयं रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17(1)(ख) के अंतर्गत, अचल संपत्ति के संबंध में एक सौ रुपये और उससे अधिक मूल्य के किसी भी अधिकार, शीर्षक या हित, चाहे निहित हो या आकस्मिक, को बनाने, घोषित करने, सौंपने, सीमित करने या समाप्त करने का आशय या संचालन नहीं करता है। इस अधिनिर्णय ने केवल एक अन्य दस्तावेज़ प्राप्त करने का अधिकार सृजित किया, जो निष्पादित होने पर किसी ऐसे अधिकार, शीर्षक या हित का सृजन, घोषणा, समनुदेशिती, सीमा या उन्मूलन करेगा और उच्चतम न्यायालय के समक्ष मामला स्पष्ट रूप से रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(2)(v) के उपबंधों के अंतर्गत आता है, जिसने धारा 17(1)(ख) के आवेदन से छूट दी है।

18. अंत में, श्री कयाम-उद-दीन ने ***<u>बच्चन सिंह बनाम करतार सिंह: जे.टी. 2001 (10) एस.सी. 64; 2002 (2) पी.एल.आर. 512</u>*** मामले में उच्चतम न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया, जिसमें उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की थी कि:-

"न्यायालय द्वारा पारित सहमति डिक्री को भारतीय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम के उपबंधों के अंतर्गत रजिस्ट्रीकृत करने की आवश्यकता नहीं है और इसलिए, प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा लिया गया दृष्टिकोण विधिक रूप से सही नहीं था और इसे उच्च न्यायालय द्वारा उचित प्रकार से अपास्त कर दिया गया है। इसलिए, हम उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से सहमत हैं।"

19. पक्षकारगण के अधिवक्तागण द्वारा प्रस्तुत तर्कों के आलोक में, तीन प्रश्नों पर विचार किया जाना आवश्यक है:-

1) क्या इस अधिनिर्णय के लिए रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 (1) (ख) के अंतर्गत अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता है? यदि हाँ, तो क्या इसे अब रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 23 के अंतर्गत विहित अवधि और अधिनियम की धारा 25 में निर्धारित विस्तारित अवधि बीत जाने के बाद रजिस्ट्रीकृत किया जा सकता है?

2) क्या प्रश्नगत अधिनिर्णय भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2(15) में प्रदत्त "विभाजन के लिखत" की परिभाषा के अंतर्गत आता है?

यदि हाँ, तो क्या स्टाम्प की अपर्याप्तता के कारण अधिनिर्णय परिबद्ध किए जाने योग्य है?

3) क्या 15,20,000/- रुपये की राशि पर ब्याज के रूप में निर्धारित शर्तें भारतीय संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 23, 24 तथा धारा 73 और 74 में निर्धारित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए शून्य हैं?

20. प्रश्न सं. 3 पर विचार करते हुए, यह एक सर्वविदित प्रतिपादना है कि निष्पादन न्यायालय डिक्री के पीछे नहीं जा सकता। यह अधिनिर्णय माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत दिया गया है और इसकी धारा 36 के आधार पर, अधिनिर्णय को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के अंतर्गत उसी तरह लागू किया जाना है जैसे कि यह न्यायालय की डिक्री हो। सभी आशयों और प्रयोजनों के लिए, इस न्यायालय को एक निष्पादन न्यायालय होने के नाते, प्रश्नगत अधिनिर्णय को न्यायालय की डिक्री के रूप में मानना होगा। परिणामस्वरूप, ब्याज के माध्यम से शर्तों के संबंध में निर्णीत ऋणी द्वारा उठाए जाने वाले मुद्दों पर यह न्यायालय विचार नहीं कर सकता है। यह याद रखना भी महत्वपूर्ण है कि निर्णीत ऋणी ने माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 34 के अंतर्गत अधिनिर्णय को चुनौती नहीं दी थी, जो विशेष रूप से न्यायालय को अधिकार देता है कि यदि उक्त उपबंध के अंतर्गत आवेदन किया जाता है, तो वह माध्यस्थम् अधिनिर्णय को अपास्त कर सकता है यदि वह भारत की सार्वजनिक नीति के साथ संघर्ष में है [देखें: धारा 34 (2) (ख) (ii)]। मामले के इस पहलू पर निर्णीत ऋणी के प्रतिविरोधों की इस

न्यायालय द्वारा परीक्षा नहीं की जा सकती क्योंकि ऐसा करना डिक्री पर पुनर्विचार करने के समान होगा।

21. पहले प्रश्न के संबंध में, जो रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(1)(ख) के अंतर्गत अधिनिर्णय के अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण के मुद्दे से संबंधित है, निर्णीत ऋणी की ओर से यह प्रतिवाद किया गया है कि अधिनिर्णय के लिए अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता है। इस बात पर कुछ विवाद था कि निष्पादन के चरण में रजिस्ट्रीकरण का मुद्दा उठाया जा सकता है या नहीं, हालाँकि, ***एम. अनसूया देवी*** *(पूर्वोक्त)* में, श्री सिंगला द्वारा भरोसा किए गए एक निर्णय में, इस प्रश्न को सीधे तौर पर निपटाया गया है और उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है - "यह प्रश्न कि क्या किसी अधिनिर्णय के लिए स्टाम्पिंग और रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता है, सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 के दायरे में आता है और अधिनियम की धारा 34 के अंतर्गत नहीं आता है"। श्री सिंगला द्वारा अधिनिर्णय के रजिस्ट्रीकरण के संदर्भ में संदर्भित अन्य सभी निर्णय माध्यस्थम् अधिनियम, 1940 के अंतर्गत पारित अधिनिर्णयों से संबंधित हैं, न कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत। दोनों अधिनियमों के अंतर्गत विचार कुछ हद तक भिन्न हैं। 1940 के अधिनियम के अंतर्गत, किसी अधिनिर्णय को लागू करने से पहले, उसे न्यायालय का विनिर्णय बनाना पड़ता था। इसलिए, न्यायालय ने अधिनिर्णय को डिक्री बनने से पहले के चरण में निपटाया। 1996 के अधिनियम के अंतर्गत,

न्यायालय अधिनिर्णय को या तो धारा 34 के अंतर्गत एक आवेदन पर या जहाँ ऐसा कोई आवेदन नहीं किया जाता है या यदि किया जाता है, तो उसे अपास्त कर दिया जाता है, 1996 के अधिनियम की धारा 36 के अनुसार अधिनिर्णय को डिक्री के रूप में लागू करने के लिए निष्पादन न्यायालय के रूप में अधिनिर्णय पर विचार करता है। विचार के पैमाने भिन्न हैं। हालाँकि, इन मतभेदों को हमें इस चरण में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि कानूनी उपबंध बहुत स्पष्ट हैं।

22. यह मानते हुए कि यह अधिनिर्णय धारा 17(1)(ख) के दायरे में आता है, धारा 17(2)(vi) के उपबंधों को देखा जाना चाहिए। यह उपबंध, अन्य बातों के साथ-साथ, यह अनुबंधित करता है कि उप-धारा (1) के खंड (ख) में कुछ भी "न्यायालय के किसी भी डिक्री या आदेश" पर लागू नहीं होगा, सिवाय उस डिक्री या आदेश के जो समझौते पर बनाया गया हो और जिसमें वाद या कार्यवाही की विषय वस्तु के अतिरिक्त अन्य अचल संपत्ति शामिल हो। इस प्रकार, न्यायालय की कोई भी डिक्री या आदेश जो धारा 17(2)(vi) में इंगित अपवाद के अंतर्गत नहीं आता है, उसे अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता नहीं होगी, भले ही न्यायालय की डिक्री या आदेश धारा 17(1)(ख) के अंतर्गत आने वाला निर्वसीयती लिखत हो। मैंने पहले ही ऊपर संकेत दिया है कि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत दिया गया अधिनिर्णय न्यायालय के डिक्री के रूप में लागू करने योग्य होगा और इसलिए अभिव्यक्ति - "न्यायालय की

कोई भी डिक्री या आदेश" 1996 अधिनियम के अंतर्गत दिए गए अधिनिर्णय को शामिल करेगी। अब केवल यह परीक्षण बाकी है कि क्या प्रश्नगत अधिनिर्णय धारा 17(2)(vi) के अधीन दिए गए अपवाद के अंतर्गत आता है। अपवाद, अन्य बातों के साथ-साथ, एक डिक्री से संबंधित है जिसे समझौते पर बनाया गया है और जिसमें वाद या कार्यवाही की विषय वस्तु के अतिरिक्त अन्य अचल संपत्ति शामिल है। अपवाद को लागू करने से पहले जिन दो शर्तों को पूरा किया जाना चाहिए, वे हैं: (1) यह एक समझौता डिक्री होनी चाहिए; और (2) समझौता डिक्री में उस अचल संपत्ति के अतिरिक्त कोई अन्य अचल संपत्ति शामिल होनी चाहिए जो वाद या कार्यवाही की विषय वस्तु है। संयोजक शब्द "और" के उपयोग के कारण दोनों शर्तों को पूरा किया जाना आवश्यक है। प्रश्नगत अधिनिर्णय स्पष्ट रूप से एक सहमति अधिनिर्णय है और परिणामस्वरूप, इसे सहमति डिक्री के रूप में माना जाना चाहिए। लेकिन, अपवाद के अंतर्गत आने से पहले, इसे उस अचल संपत्ति के अतिरिक्त अन्य अचल संपत्ति से भी निपटना चाहिए जो माध्यस्थम् कार्यवाही की विषय वस्तु थी। स्वीकृत स्थिति यह है कि मध्यस्थता उसी संपत्ति के संबंध में थी जिसके संबंध में सहमति अधिनिर्णय दिया गया है। स्पष्ट रूप से, सहमति अधिनिर्णय में उस अचल संपत्ति के अतिरिक्त कोई अन्य अचल संपत्ति शामिल नहीं है जो मध्यस्थता कार्यवाही की विषय वस्तु थी। इस प्रकार, दूसरी शर्त पूरी नहीं होती। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रश्नगत अधिनिर्णय रजिस्ट्रीकरण

अधिनियम, 1908 की धारा 17(2)(vi) में बताए गए अपवाद के अंतर्गत नहीं आएगा। अंतिम निष्कर्ष यह है कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17(1)(ख) प्रश्नगत अधिनिर्णय पर लागू नहीं होगी और इसलिए, पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि अधिनिर्णय अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत नहीं है। यह पूरक प्रश्न कि क्या अधिनिर्णय अब रजिस्ट्रीकृत किया जा सकता है, उठता ही नहीं क्योंकि अधिनिर्णय के लिए, किसी भी स्थिति में, अनिवार्य रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता नहीं है।

23. जैसा कि ऊपर बताया गया है, ***बच्चन सिंह*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में उच्चतम न्यायालय ने देखा था कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 के उपबंधों के अंतर्गत न्यायालय द्वारा पारित सहमति डिक्री को रजिस्ट्रीकृत करने की आवश्यकता नहीं है। यह भी उल्लेख किया जाना चाहिए कि, जैसा कि ***लच्छमण दास बनाम राम लाल और अन्य: 1989 (3) एस.सी.सी. 99*** के मामले में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की थी, रजिस्ट्रीकरण का वास्तविक प्रयोजन यह सुनिश्चित करना है कि संपत्ति से संबंधित प्रत्येक व्यक्ति, जहाँ ऐसे दस्तावेज़ के लिए रजिस्ट्रीकरण की आवश्यकता होती है, रजिस्टर में निहित बयानों पर विश्वास के साथ सभी लेनदेन, जिनसे शीर्षक प्रभावित हो सकता है, के पूर्ण और संपूर्ण विवरण के रूप में भरोसा किया जाया सके। उच्चतम न्यायालय ने आगे टिप्पणी की कि रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1908 की धारा 17 एक अक्षमकारी धारा है, इसलिए इसकी व्याख्या सख्ती से की जानी चाहिए और

इसलिए, जब तक कोई दस्तावेज़ स्पष्ट रूप से धारा के उपबंधों के अंतर्गत नहीं लाया जाता है, तब तक उसका रजिस्ट्रीकरण न होना उसे साक्ष्य के रूप में स्वीकार किए जाने में बाधा नहीं होगा। मैं ***पी.के. नांगिया बनाम भूमि एवं विकास अधिकारी, नई दिल्ली एवं अन्य:*** **आई.एल.आर. (1987) I (दिल्ली) 405** के मामले में इस न्यायालय के खंड पीठ के निर्णय का भी उल्लेख करूँगा, जिसमें खंड पीठ ने अचल संपत्ति के विभाजन को प्रभावित करने वाले समझौता डिक्री की व्याख्या करते हुए इसे अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकृत अभिनिर्धारित नहीं किया था, क्योंकि यह उक्त अधिनियम की धारा 17(2)(vi) में उल्लिखित अपवाद के अंतर्गत नहीं आता था, क्योंकि समझौता डिक्री में उस अचल संपत्ति के अतिरिक्त कोई अन्य अचल संपत्ति शामिल नहीं थी, जो वाद की विषयवस्तु थी। इस प्रकार पहले प्रश्न के संबंध में चर्चा समाप्त होती है।

24. दूसरे प्रश्न के संबंध में, श्री सिंगला का प्रतिविरोध था कि यह अधिनिर्णय मात्र 100/- रुपये के गैर-न्यायिक स्टाम्प पेपर पर तैयार किया गया है और इस पर अपर्याप्त स्टाम्प लगा है, क्योंकि स्टाम्प भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2(15) के उपबंधों के साथ पठित उक्त अधिनियम की अनुसूची I के अनुच्छेद 12 और 45 के अंतर्गत देय था। दूसरी ओर, श्री कयाम-उद-दीन ने प्रस्तुत किया कि प्रश्नगत अधिनिर्णय भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 (15) में परिभाषित "विभाजन के लिखत" के

अंतर्गत नहीं आता है। परिणामस्वरूप, उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिनिर्णय अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित नहीं था।

25. जैसा कि ***<u>डॉ. चिरंजी लाल बनाम हरि दास:</u>*** **2005 (10) एस.सी.सी. 746** में उच्चतम न्यायालय ने टिप्पणी की थी, स्टाम्प अधिनियम एक राजवित्तीय कानून है जिसका उद्देश्य कुछ श्रेणियों के लिखतों पर राज्य के लिए राजस्व सुरक्षित करना है। अधिनियम के कड़े उपबंधों की कल्पना राजस्व के हित में की गई है। एक बार जब वह उद्देश्य विधि के अनुसार सुरक्षित हो जाता है, तो लिखत पर अपना दावा करने वाला पक्ष लिखत में प्रारंभिक दोष के आधार पर पराजित नहीं होगा। उच्चतम न्यायालय ने यह भी टिप्पणी की कि स्टाम्प अधिनियम किसी मुकदमेबाज़ को अपने प्रतिद्वंद्वी के मामले का सामना करने के लिए तकनीकी हथियार से लैस करने के लिए अधिनियमित नहीं किया गया है। वर्तमान मामले में, निर्णीत ऋणी डिक्री के निष्पादन में देरी करने और उसे विफल करने के लिए स्टाम्प अधिनियम को तकनीकी हथियार के रूप में उपयोग करने का प्रयास कर रहा है। वर्तमान मामले पर उच्चतम न्यायालय द्वारा की गई टिप्पणियों की पृष्ठभूमि में विचार किया जाना चाहिए। न्यायालय को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि राजस्व के हित को नुकसान न पहुँचे, जबकि उसी समय, डिक्री धारक को डिक्री का लाभ उठाने में सक्षम बनाना चाहिए और निर्णीत ऋणी को डिक्री को विफल करने से रोकना चाहिए।

26. धारा 2 (15) विभाजन के लिखत को किसी भी लिखत के रूप में परिभाषित करती है जिसके द्वारा किसी भी संपत्ति के सह-स्वामी ऐसी संपत्ति को अलग-अलग भागों में विभाजित करते हैं या विभाजित करने के लिए सहमत होते हैं, और इसमें किसी राजस्व प्राधिकरण या किसी सिविल कोर्ट द्वारा पारित विभाजन को प्रभावी करने के लिए अंतिम आदेश और विभाजन का निर्देश देने वाला अधिनिर्णय भी शामिल है। डिक्री धारक की ओर से यह प्रतिवाद किया गया कि अधिनिर्णय अपने आप में संपत्तियों का विभाजन नहीं करता है और केवल संपत्ति के उन भागों की घोषणा करता है जो डिक्री धारक और निर्णीत ऋणी को मिलेंगे। यह भी प्रतिवाद किया गया कि यह निर्णीत ऋणी द्वारा उन दोनों के बीच विभाजित भूमि की लागत के अंतर के लिए डिक्री धारक को 15,20,000/- रुपये की उक्त राशि का भुगतान करने के अधीन था। उन्होंने प्रस्तुत किया कि अधिनिर्णय केवल अधिकारों की पहचान करता है, लेकिन शीर्षक प्रदान नहीं करता है और इसलिए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 (15) के अर्थ के भीतर विभाजन का लिखत नहीं है। श्री कयाम-उद-दीन ने ***श्रीमती अरुणा परवाल*** *(पूर्वोक्त)* के मामले में इस न्यायालय के निर्णय पर दृढ़ता से भरोसा किया। हालाँकि, मेरा मानना है कि उक्त निर्णय भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 (15) के उपबंधों की व्याख्या करने के प्रयोजनों के लिए प्रासंगिक नहीं है। ***श्रीमती अरुणा परवाल*** *(पूर्वोक्त)* में निर्णय रजिस्ट्रीकरण अधिनियम की धारा 17 के संदर्भ में दिया गया है। यह

भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 2 (15) के संबंध में निर्णय नहीं है। दोनों अधिनियमों में दो उपबंध अलग-अलग आयाम और महत्व के हैं। जहाँ तक धारा 17 के अंतर्गत रजिस्ट्रीकरण योग्यता का प्रश्न है, उस मुद्दे पर पहले ही चर्चा की जा चुकी है। परीक्षा की जाने वाली बात यह नहीं है कि अधिनिर्णय अनिवार्य रूप से रजिस्ट्रीकरण के योग्य है या नहीं, बल्कि यह है कि क्या इस पर कोई स्टाम्प शुल्क देय है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची I के अनुच्छेद 45 के अनुसार स्टाम्प का भुगतान करने की देयता केवल तभी उत्पन्न होगी जब प्रश्नगत लिखत उक्त अधिनियम की धारा 2 (15) में दिए गए "विभाजन के लिखत" की परिभाषा के अंतर्गत आता है। जैसा कि ऊपर बताया गया है, कोई भी लिखत जिसके द्वारा किसी संपत्ति के सह-स्वामी ऐसी संपत्ति को अलग-अलग भागों में विभाजित करते हैं या विभाजित करने के लिए सहमत होते हैं, विभाजन का लिखत होगा। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यह केवल वह लिखत नहीं है जिसके द्वारा संपत्ति वास्तव में सह-स्वामियों द्वारा विभाजित की जाती है, बल्कि वह लिखत भी है जिसके द्वारा उक्त सह-स्वामी संपत्ति को अलग-अलग भागों में विभाजित करने के लिए सहमत होते हैं जो "विभाजन के लिखत" की परिभाषा में शामिल होगा।

27. प्रश्नगत अधिनिर्णय एक सहमति अधिनिर्णय है। पक्षकारगण इस बात पर सहमत हुए हैं कि प्लॉट सं. 41, रामा रोड, नजफ़गढ़ रोड, औद्योगिक क्षेत्र, नई दिल्ली-110015 को डिक्री धारक और निर्णीत ऋणी के बीच विभाजित

किया जा सकता है, जो मैसर्स एस.एम.डी. के भागीदार हैं। अधिनिर्णय यह भी दर्शाता है कि पक्षकारगण इस बात पर सहमत हुए कि लाल रंग से चिह्नित भाग श्री जितेन्द्र मोहन मलिक (डिक्री धारक) को मिलेगा और हरा रंग से चिह्नित भाग श्री रवि भूषण मलिक (निर्णीत ऋणी) को मिलेगा, परंतु श्री रवि भूषण मलिक (निर्णीत ऋणी) दोनों के बीच विभाजित भूमि की लागत के अंतर के लिए डिक्री धारक को 15,20,000/- रुपये का भुगतान करेगा। यह भी सहमति शर्तों का भाग था कि अधिनिर्णय की तिथि से 15 दिनों के भीतर मौका-ए-नक्शा के अनुसार कब्ज़ा भी निर्धारित किया जाएगा। इस तरह के सहमति अधिनिर्णय से स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि पक्षकारगण जो कथित संपत्ति के सह-स्वामी थे, वे ऐसी संपत्ति को अलग-अलग "विभाजित करने के लिए सहमत" थे। यह अलग बात है कि वास्तविक विभाजन होना था, परंतु डिक्री धारक को निर्णीत ऋणी से 15,20,000/- रुपये की राशि और उस पर ब्याज, यदि कोई हो, प्राप्त हो। मैं डिक्री धारक के विद्वान अधिवक्ता द्वारा की गई प्रस्तुतियों से सहमत नहीं हूँ कि सह-स्वामियों की सहमति से किया गया ऐसा अधिनिर्णय भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 2 (15) में परिभाषित "विभाजन के लिखत" के अंतर्गत नहीं आएगा।

28. मैं यह भी बताना चाहूँगा कि उक्त अधिनियम की अनुसूची 1 के अनुच्छेद 45 में धारा 2 (15) में परिभाषित विभाजन के लिखत के लिए उचित स्टाम्प शुल्क निर्धारित किया गया है। दिल्ली पर लागू उक्त अनुच्छेद में यह

भी उपबंध है कि जहाँ किसी राजस्व प्राधिकरण या किसी सिविल न्यायालय द्वारा पारित विभाजन को प्रभावी करने के लिए अंतिम आदेश, या विभाजन का निर्देश देने वाले मध्यस्थ द्वारा पारित अधिनिर्णय, विभाजन के लिखत के लिए आवश्यक स्टाम्प के साथ स्टाम्पित किया जाता है, और ऐसे आदेश या अधिनिर्णय के अनुसरण में विभाजन के लिखत को बाद में निष्पादित किया जाता है, ऐसे लिखत पर शुल्क दस रुपये से अधिक नहीं होगा। यह इस तथ्य का भी संकेत है कि एक लिखत जो स्वयं विभाजन को प्रभावी नहीं करता है, वह भी उक्त अनुच्छेद 45 के अनुसार स्टाम्पित किए जाने के लिए उत्तरदायी है और ऐसी स्थिति में, विभाजन को प्रभावी करने वाले बाद के लिखत पर स्टाम्प शुल्क की समान राशि के साथ दो बार स्टाम्पित करने की आवश्यकता नहीं होगी, लेकिन दूसरे लिखत पर स्टाम्प शुल्क दस रुपये तक सीमित होगा। उपबंधों की योजना यह प्रतीत होती है कि जहाँ एक लिखत संपत्ति को विभाजित करने के लिए एक समझौते को अभिलिखित करता है, उसे पहली बार में स्टाम्प अधिनियम, 1899 की अनुसूची I के अनुच्छेद 45 के साथ धारा 2 (15) के अनुसार स्टाम्पित किया जाना चाहिए। चूँकि इस तरह के लिखत के बाद एक अन्य लिखत की आवश्यकता होती है जहाँ संपत्ति वास्तव में अलग-अलग विभाजित होती है, विधायिका ने यह स्पष्ट कर दिया है कि दूसरे लिखत पर, स्टाम्प शुल्क केवल 10 रुपये तक सीमित होगा। ये उपबंध श्री कयाम-उद-दीन के इस तर्क को पूरी तरह से नकार देते हैं कि चूँकि अधिनिर्णय में

स्वामित्व प्रदान नहीं किया गया है और पक्षकारगण केवल अधिनिर्णय के आधार पर अपने संबंधित भाग को नहीं बेच सकते हैं, इसलिए जब विभाजन विलेख बाद में तैयार किया जाएगा, तो उस पर अनुच्छेद 45 के अनुसार स्टाम्प शुल्क का भुगतान किया जाएगा। स्टाम्प अधिनियम के उपबंधों को पढ़ने मात्र पर यह संकेत मिलता है कि जब दो लिखत होते हैं, जिनमें से एक में संपत्ति को विभाजित करने के लिए एक समझौते को दर्ज किया जाता है और दूसरे में वास्तव में ऐसी संपत्ति का विभाजन होता है, तो ऐसे दोनों लिखत उक्त अधिनियम की धारा 2 (15) की परिभाषा के अंतर्गत आएँगे। यह भी स्पष्ट है कि उक्त अधिनियम की अनुसूची I के अनुच्छेद 45 के अनुसार स्टाम्प शुल्क पहले दो दस्तावेज़ों में से पहले के निष्पादन पर देय होगा। यदि इसके बाद दूसरे प्रकार का दस्तावेज़ आता है, तो स्टाम्प शुल्क दस रुपये तक सीमित होगा। इसलिए, यह प्रतिवाद नहीं किया जा सकता है कि पहले लिखत पर स्टाम्प शुल्क देय नहीं है और केवल दूसरे लिखत के चरण पर देय होगा।

29. यह तर्क कि अधिनिर्णय पर स्टाम्प लगाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि माध्यथम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत अधिनिर्णय पर स्टाम्प शुल्क का भुगतान करने का कोई उपबंध नहीं है, केवल यह कहा जाना चाहिए कि इसे अस्वीकार कर दिया गया है। भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 के अंतर्गत स्टाम्प शुल्क का उपबंध है, न कि माध्यथम् और सुलह अधिनियम, 1996 के अंतर्गत। श्री कयाम-उद-दीन का आगे का तर्क यह है कि हालाँकि

भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 बिना स्टाम्प वाले या अपर्याप्त रूप से स्टाम्पित किए गए लिखत की साक्ष्य में अस्वीकार्यता से संबंधित है, लेकिन यह वर्तमान मामले में लागू नहीं है क्योंकि प्रश्नगत अधिनिर्णय को साक्ष्य में स्वीकार नहीं किया जा रहा है। उन्होंने प्रस्तुत किया कि माध्यथम् अधिनियम, 1940 के अंतर्गत, न्यायालय द्वारा विनिर्णय बनाए जाने से पहले माध्यथम् को साक्ष्य में स्वीकार किया जाना चाहिए और इसलिए, भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 प्रासंगिक थी। उनका प्रतिविरोध यह था कि नए अधिनियम (1996 अधिनियम) के अंतर्गत, भारतीय स्टाम्प अधिनियम की धारा 35 अप्रासंगिक हो गई, क्योंकि माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 की धारा 36 के आधार पर एक अधिनिर्णय स्वयं निष्पादन योग्य हो गया। यह तर्क, हालाँकि आकर्षक है, दुर्भाग्य से डिक्री धारक के मामले को आगे नहीं बढ़ाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि, तर्क के लिए भी, यदि भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 35 को कुछ समय के लिए अलग रखा जाता है, तो उक्त अधिनियम की धारा 33 प्रत्येक व्यक्ति पर, जिसके पास विधि द्वारा या पक्षकारगण की सहमति से साक्ष्य प्राप्त करने का अधिकार है, तथा प्रत्येक व्यक्ति जो किसी सार्वजनिक कार्यालय का प्रभारी है, सिवाय पुलिस अधिकारी के, जिसके समक्ष कोई ऐसा लिखत, जो उसकी राय में, कर्तव्य के अधीन है, प्रस्तुत किया जाता है या उसके कार्यों के निष्पादन में आता है, यह कर्तव्य डालती है कि यदि उसे ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा लिखत विधिवत् स्टाम्पित

नहीं है, तो उसे परिबद्ध कर ले। इसलिए, साक्ष्य में इसकी स्वीकार्यता के प्रश्न के बावजूद, जब कोई लिखत, जिस पर विधिवत् स्टाम्प नहीं है, धारा 33 में निर्दिष्ट प्राधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है, तो ऐसे प्राधिकारी का कर्तव्य है कि उसे परिबद्ध कर ले। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि मूल अधिनिर्णय निष्पादन के प्रयोजनों के लिए इस न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया गया है। यदि इस न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि लिखत (प्रश्नगत अधिनिर्णय) विधिवत् स्टाम्पित नहीं है, तो यह न्यायालय भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 33 के उपबंधों के अंतर्गत उसे परिबद्ध करने के लिए बाध्य है। यह पहले ही ऊपर चर्चा की जा चुकी है कि प्रश्नगत अधिनिर्णय को उक्त अधिनियम की अनुसूची 1 के अनुच्छेद 45 के अनुसार स्टाम्पित किया जाना अपेक्षित था। अधिनिर्णय मात्र 100/- रुपये के स्टाम्प पेपर पर किया गया है। यह स्पष्ट रूप से अपर्याप्त है। यद्यपि संपत्ति का मूल्य इंगित नहीं किया गया है, परंतु इस तथ्य से एक संकेत लिया जा सकता है कि अधिनिर्णय में डिक्री धारक और निर्णीत ऋणी के बीच विभाजित भूमि की लागत के अंतर की गणना 15,20,000/- रुपये के रूप में की गई है। स्पष्टतः अधिनिर्णय पर चुकाई गई 100/- रुपये की स्टाम्प शुल्क अपर्याप्त है। ऐसे मामले में कार्रवाई का एकमात्र उपाय उसे परिबद्ध करना है। परिणामस्वरूप अधिनिर्णय परिबद्ध कर लिया गया है।

30. जैसा कि ***<u>हरीश चंदर शर्मा बनाम श्रीमती प्रीति शर्मा, आदि:</u>*** **आई.एल.आर. (1976) I दिल्ली 142** में बताया गया है, इस न्यायालय के लिए अगला कदम भारतीय स्टाम्प अधिनियम, 1899 की धारा 38 (2) के अनुसार परिबद्ध किए गए दस्तावेज़ को मूल रूप में कलेक्टर के पास भेजना है। तदनुसार आदेश दिया जाता है। कलेक्टर उक्त अधिनियम की धारा 40 में निर्दिष्ट प्रक्रिया का पालन करेगा और उसके बाद उससे निपटने के बाद कलेक्टर आगे की कार्यवाही के लिए मूल दस्तावेज़ को इस न्यायालय को वापस कर देगा।

31. निष्कर्ष निकालने से पहले, यह उल्लेख किया जाना चाहिए कि स्टाम्प और दंड में कमी, यदि कोई हो, तो उसे डिक्री धारक और निर्णीत ऋणी द्वारा समान अनुपात में पूरा करना होगा क्योंकि सहमति अधिनिर्णय समान भागों में विभाजन को इंगित करता है।

इन निर्देशों के साथ, आवेदन का निपटान किया जाता है।

बदर दुर्रेज़ अहमद
(न्यायाधीश)

02 जुलाई, 2008
एसआर/*दत्त*

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*